International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

महाकवि भारवि रचित किरातार्जुनीयम् महाकाव्य का पारिस्थैतिक एवं राजनैतिक विश्लेषणः

डॉ. वन्दना मिश्रा

असिस्टेन्ट प्रो. संस्कृत विभाग सन्त तुलसी दास पी.जी. कालेज कादीपुर, सुलतानपुर

Abstract

भारवि अपने अर्थ–गौरव या गहन–गम्भीर भाव–सम्पदा के लिए जाने जाते हैं। उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम, इस अर्थ–गौरव से मेल खाती एक विदग्ध भाषा और अभिव्यक्ति–कौशल भी उनके यहाँ मौजूद है। राजनीति और व्यवहार–नीति सहित जीवन के विविध आयामों में उनकी असाधारण पैठ है। आदर्श और व्यवहार के द्वंद्व तथा यथार्थ जीवन के अतिरेकों के समाहार से अर्जित पारिस्थैतिक संतुलन उनके लेखन को 'समस्तलोकरंजक' बनाता है। लेकिन भारवि मूलतः जीवन की विडंबनाओं और विसंगतियों के कवि हैं, वे उनका सामना करते हैं और उनके खुरदुरे यथार्थ के बीच संगति बिठाने का प्रयास करते हैं। किरातार्जुनीयम् भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है, जिसने एक सांगोपांग महाकाव्य का मार्ग प्रशस्त किया। माघ–जैसे कवियों ने उसी का अनुगमन करते हुए संस्कृत साहित्य भंडार को इस विधा से समृद्ध किया और इसे नई ऊँचाई प्रदान की। राजनीति और व्यवहार–नीति में भारवि के विशेष रुझान के चलते यह युक्तियुक्त ही था कि वे किरातार्जुनीयम् का कथानक महाभारत से लेते हैं। उन्होंने वनपर्व के पाँच अध्यायों से पांडवों के वनवास के समय अमोघ अस्त्र के लिए अर्जुन द्वारा की गई शिव की घोर तपस्या के फलस्वरूप पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के छोटे–से प्रसंग को उठाकर उसे अठारह सर्गों के महाकाव्य में फैला दिया है।

Keyword: किरातार्जुनीयम् नीतिशास्त्र, राजनीति, पारिस्थैतिक तथा लोकव्यवहार का महा काव्य है।

संस्कृत भाषा सबसे प्राचीन भाषा है। यह भाषा अनेक भाषाओं की जननी हैं। इस भाषा के गोद में कई भाषाएं उत्पन्न होकर विकसित हुई है। संस्कृत–साहित्य में महाकाव्य का विशेष महत्त्व है। मानव जीवन से सम्बन्धित समस्त विषय संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं यथा– वेद, वेदांग, उपनिषद, ब्राताण, आरण्यक, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, काव्य, महाकाव्य आदि। संस्कृत कवियों के पद्धति में कवियों की दृष्टि रसार्द्र होती है, जिसके कारण रसमयता, विषय की बहुलता, प्रसादमयी भाषा आदि का सहज प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति में महाकाव्य की कथावस्तु अल्प होती है और वर्णन विस्तार पूर्वक किया जाता है। इसमें एक छोटी सी कथावस्तु को लेकर कविगण प्राकृतिक वर्णनों द्वारा महाकाव्य को विस्तृत रूप देते हैं। अपनी अलंकृत शैली एवं काव्य में अन्य गुणों के कारण महाकवि भारवि संस्कृत–साहित्य के अत्यन्त लोकप्रिय कवि बन गये हैं।

महाकवि भारवि समूचे संस्कृत संसार में राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित के रूप में ख्याति लब्ध हैं।इनके किरातार्जुनीयम काव्य में नीतिशास्त्र, राजनीति, पारिस्थैतिक तथा लोकव्यवहार सम्बन्धी तत्त्वों का प्रारम्भिक सर्गो में समावेश किया गया हैं । इसका कारण महाकवि का कई राजाओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था, और कवि का अधिक से अधिक समय राजदरबार में व्यतीत हुआ होगा । जिस कारण उनका राजनीतिविषयक तथा व्यावहारिक ज्ञान अत्यन्त समृद्ध हैं। महाकवि भारवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ राजनीति के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों का समन्वय काव्य के कथानक के साथ स्थापित किया हैं। इन नीतिपरक वृत्तान्तों की उपयोगिता जीवन में होने के कारण महाकाव्य की प्रसिद्धि का मुख्य कारण हैं। सम्प्रति महाकाव्य में वर्णित सूक्तियों की लोकोक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हो गई हैं और इनके द्वारा कवि की नीतिकुशलता तथा व्यवहारकुशलता का सुन्दर परिचय प्राप्त होता हैं।

भारवि का काल खन्ड

भारवि के जीवनवृत्त को निर्धारित करना अति दुष्कर कार्य है। परन्तु उनके स्थिति काल को जानना उतना कठिन कार्य नहीं है। भारवि के विषय में अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर कुछ जानकारी प्राप्त होती है उसे यहाँ प्रस्तुत किया गया है। कालिदास की रचनाओं का प्रभाव भारवि के काव्य में दृष्टिगत होता है और भारवि के काव्य का प्रभाव माघ के काव्य पर परिलक्षित होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि महाकवि भारवि कालिदास के उत्तरवर्ती तथा माघ के पूर्ववर्ती कवि है। कादम्बरीकार महाकवि बाणभट्ट का समय सातवीं शताब्दी माना जाता है। तथापि बाणभट्ट ने अपने ग्रंथों में भारवि का कहीं नामोल्लेख नहीं किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि बाण के समय तक भारवि को ख्याति नहीं प्राप्त हुई थी। हर्षवर्धन के सभाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरितम् नामक आख्यायिका में दीपशिखा

उपाधिधारी कवि कालिदास का बड़े सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है– 'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु'। बीजापुर के ऐहोल नामक ग्राम में एक शिलालेख प्राप्त होता है, जिसमें जैन कवि रविकीर्ति ने चालुक्यवंशीय राजा पुलकेशियन द्वितीय की प्रशस्ति लिखी है। रविकीर्ति ने इस शिलालेख में कालिदास और भारवि का उल्लेख किया है–

''स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः''। इस शिलालेख का समय 634 ई0 है। अतः भारवि का समय 634 ई0 पूर्व होना चाहिए। बाह्य साक्ष्यों के आधार पर भारवि का समय 600 ई0 के आसपास प्रतीत होता है। वामन और जयादित्य द्वारा 650 में लिखी गई काशिकावृत्ति में किरातार्जुनीयम् का एक पद्य उद्धृत किया गया है। उस समय भारवि कवि रूप में कुछ अवश्य प्रसिद्ध रहे होगें। अतः भारवि का समय 650 ई0 के पूर्व मानना उचित होगा।

किरातार्जुनीयम महाकाव्य

जो सर्गों में निबद्ध हो उसे महाकाव्य कहते हैं। इसका नायक देवता अथवा सद्वंश में उत्पन्न कोई क्षत्रिय होना चाहिए जो धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त हो। एकवंश में उत्पन्न अनेक कुलीन राजा भी नायक हो सकता है। श्रृगर, वीर और शान्त में से कोई एक रस प्रधान तथा अन्य रस गौण रूप में हो ना चाहिए। यह मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वाहण नामक पाँच संधियों से युक्त होना चाहिए। इसकी कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध एवं किसी सज्जन से सम्बद्ध हो। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ में से महाकाव्य के फल प्राप्ति का एक प्रयोजन होना चाहिए। आरम्भ में नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक, वा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिए। कहीं–कहीं पर दुर्जन की निन्दा और सज्जन की प्रशंसा होनी चाहिए। सर्ग के अन्त में भावी कथावस्तु को सूचित करना चाहिए। सन्ध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध–प्रस्थान, उपयम, मन्त्र, पुत्रोत्पत्ति आदि का सांगोपाग वर्णन होना चाहिए। इस काव्य में आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पणानुसार काव्य का लक्षण प्रस्तुत किया गया है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायको सुरः,
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरादात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।

इस काव्य के नायक अर्जुन धीरोदात्त है जो प्रसिद्ध क्षत्रियवंश में उत्पन्न हुए है। अर्जुन के अन्तः करण में धीरोदात्त नायक के सम्पूर्ण गुण विद्यमान है।

किरातार्जुनीयम् अट्ठारह सर्गों वाला महाकाव्य है। इस काव्य का चौथा सर्ग सबसे छोटा है और ग्यारहवां सर्ग सबसे बड़ा है। प्रथम सर्ग में 46 श्लोक, द्वितीय सर्ग 59 श्लोक, तृतीय सर्ग में 60 श्लोक, चतुर्थ सर्ग में 38 श्लोक यह सबसे कम पद्यों वाला सर्ग है। पंचम सर्ग में 52 श्लोक, ग्यारहवें सर्ग में 81 श्लोक, यह सबसे अधिक श्लोकों वाला सर्ग है। इस महाकाव्य में सर्ग न तो बहुत विस्तृत है न ही बहुत अल्प है।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्त्मयः क्वापि सर्गः कष्वन् दृष्यते।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।

किरातार्जुनीयम् की मूल कथावस्तु में परिमार्जन– महाकवि भारवि ने इस महाकाव्य की मूल कथावस्तु में कुछ परिवर्तन अवश्य किया है, जैसे–युधिष्ठिर के द्वारा गुप्तचर को नियुक्त करना, वनेचर के मुख से दुर्योधन की शासन पद्धति को जानकर द्रौपदी और भीम का क्रोधित होना, यह कवि की अपनी कल्पना मात्र है। महाभारत की कथा में द्रौपदी, भीम और व्यास का संवाद मात्र हैं। इस महाकाव्य में भारवि ने महाभारत के अनुसार स्वयं संवादों की योजना की है। महर्षि वेदव्यास अर्जुन को वेद–स्मृति शास्त्र की विद्या प्रदान करते हैं। उसके उपरान्त अर्जुन यक्ष की सहायता से इन्द्रकील पर्वत पर जाता है। किरातार्जुनीयम् में हिमालय पर्वत, इन्द्रकील पर्वत, गन्धमादन पर्वत और अर्जुन की तपस्या कवि की स्वकल्पना है। अर्जुन की तपस्या को भंग करने के लिए इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्साराएं कवि के प्रतिभा की कल्पना का विलास है। इस प्रकार कवि भारवि ने महाभारत की मूलकथा में परिस्थतिजन्य परिवर्तन करके पर्वत, पठार, हिमालय पर्वत, इन्द्रकील पर्वत, गन्धमादन पर्वत, नदी आदि के वर्णन से काव्य को सुशोभित किया है।

इस महाकाव्य के **प्रथम सर्ग**– का शुभारम्भ द्यूतक्रीडा में पराजित द्वैतवन में निवास करने वाले पाण्डवों से प्रारम्भ होता है। द्वैतवासी युधिष्ठिर दुर्योधन की शासन–पद्धति का सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के लिए किरातवेशधारी वनेचर को नियुक्त किया हैं। वनेचर हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन के शासन–पद्धति को अच्छी तरह जानकर पुनः द्वैतवन में युधिष्ठिर के समीप आकर दुर्योधन की कूटनीति का सम्पूर्ण समाचार बताता है। यह वृत्तान्त जानकर युधिष्ठिर द्रौपदी के राजमहल में जाते हैं तथा भाईयों के सम्मुख वनेचर के कथन को यथावत् सुनाते हैं। यह सुनकर द्रौपदी के अन्तः करण की ज्वाला प्रदीप्त हो जाती है और युधिष्ठिर के शान्ति नीति की निन्दा करते हुए दुर्योधन के साथ युद्ध करने के लिए युधिष्ठिर को उत्साहित करती है।

द्वितीय सर्ग में भीम–द्रौपदी सहित युधिष्ठिर को युद्ध करने के लिए कहते हैं। परन्तु युधिष्ठिर युद्ध करने के लिए उनकी बातों का समर्थन करते हैं तथा उचित समय आने के लिए प्रतीक्षा करने के लिए कहते हैं। उसी समय भगवान् वेदव्यास वहाँ उपस्थित होते हैं। **तृतीय सर्ग**– इस सर्ग के आरम्भ में युधिष्ठिर–व्यास का संवाद वर्णित है। वेदव्यास अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्राप्त हेतु हिमालय पर्वत पर जाकर

तपस्या करने के लिए कहते हैं। महर्षि वेदव्यास के कथनानुसार अर्जुन हिमालयपर्वत पर तपस्या करने के लिए प्रस्थान करते हैं। **चतुर्थ सर्ग–** चतुर्थ सर्ग में यक्ष अर्जुन के मार्ग का प्रदर्शन करता है। हिमालयपर्वत पर तपस्या के लिए जाते समय पर्वत, वन, शरद्ऋतु तथा गोपालों का बड़ा रमणीय वर्णन किया गया है। **पंचम सर्ग–** इस सर्ग में यक्ष हिमालय की विशेषता बताकर और अर्जुन को तपस्या में लगाकर स्वयं चला जाता है। इसी सर्ग में हिमालय की सुन्दरता का भी वर्णन किया गया है। **षष्ठ सर्ग–** अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र अपनी अप्सराओं को हिमालयपर्वत पर जाने के लिए भेजते हैं। सभी अप्सराएं हिमालय की ओर प्रस्थान करती है जिसका वर्णन कवि ने **छठवें सर्ग** में किया है। **सप्तम सर्ग**– इस सर्ग में अप्सराओं की यात्रा तथा हिमालयपर्वत पर पहुँचने का वर्णन किया गया है। **अष्टम सर्ग**– अष्टम सर्ग में गन्धर्वों के साथ अप्सराओं का वन विहार, गगस्नान और उनकी जलक्रीडा का सरल एवं विस्तृत वर्णन किया गया है। **नवम सर्ग**– इस सर्ग में संध्याकाल, प्रातः काल, चन्द्रोदय आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। **दशम सर्ग**– दशम सर्ग में अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिए अप्सराएं नृत्य, गीत वाद्ययन्त्र, हाव–भाव रूप–सौन्दर्य आदि। इन विविध प्रयत्नों के द्वारा वे अप्सराएं अर्जुन को तपस्या से विहीन करने में असफल रही। अन्ततः निराश होकर सभी अप्सराएं वापस चली गई। ए**कादशम सर्ग–** इस सर्ग में अर्जुन मुनिवेश में इन्द्र से वार्ता करते हैं। इन्द्र अर्जुन की कठोर तपस्या देखकर प्रसन्न हो जाते हैं और भगवान् शिव की तपस्या करने के लिए अर्जुन को उपदेश देते हैं। **द्वादषम सर्ग**– इस सर्ग में इन्द्र के उपदेशानुसार अर्जुन पुनः तपस्या में लीन हो जाते हैं। अर्जुन की कठोर तपस्या को देखकर मुनिगण शिव के पास जाकर प्रार्थना करते हैं तब भगवान् शिव मुनिगण को तपस्या का रहस्य बताते हैं कि– इन्द्र की तपस्या को भंग करने के लिए मूकदानव छलपूर्वक वराह का रूप धारण करके जाएंगा। उसी समय अर्जुन की रक्षा के लिए किरात् का मायावी वेशधारण करके मैं वहां उपस्थित होकर उसकी रक्षा करूंगा। त्रयोदश एवं **चतुर्दश सर्ग–** इस सर्ग में अर्जुन सूकर को अपनी ओर आते हुए देखकर किरात् और अर्जुन दोनों सूकर पर एक साथ बाण छोड़ते हैं। अर्जुन का बाण सूकर को मारकर पृथिवी में घुस जाता है और बचे हुए बाण के लिए किरात्–अर्जुन के मध्य विवाद चलता हैं। **पंचदशम सर्ग**– इस सर्ग में किरातवेशधारी शिव तथा अर्जुन के मध्य युद्ध का वर्णन किया गया हैं। **षोडश सर्ग**– इस सर्ग में अर्जुन अपने सभी अस्त्रों को निष्फल देखकर किरात् शिव के साथ बाहु–युद्ध करने की इच्छा प्रकट करते हैं। **सप्तदश सर्ग–** कवि ने इस सर्ग में अर्जुन और शिव के मध्य महासंग्रम का वर्णन किया है। **अष्टादशम सर्ग**– यह अन्तिम सर्ग हैं। बाहुयुद्ध में लीन अर्जुन भगवान् शिव के चरणों को पकड़ लेते हैं उसी समय शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं और अर्जुन को अपने गले लगाते हैं। अन्ततः उन्हें दिव्यास्त्र या पाशुपत अस्त्र दे करके विजयश्री का आर्शीवाद प्रदान करते हैं। काव्य में कथा का सार इस प्रकार उपलब्ध होता है।

राजनीतिक परिदृष्य : महाकाव्य का प्रारम्भ ही राजनैतिक अवधारणा से होता हैं। प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में ही कवि की राजनीतिक –कुशलता का परिचय प्राप्त होता हैं।कवि ने महाकाव्य में वनेचर के माध्यम से शत्रु की शासन– व्यवस्था, प्रजास्थिति, आर्थिक दशा इत्यादि समग्र वृत्तान्तों की जानकारी प्राप्त की जाती हैं। वनेचर की उक्तियों द्वारा राजनीति तथा लोकव्यवहार के अनेक उपयोगी तथ्यों का प्रादुर्भाव हुआ हैं। काव्य में नीतिशास्त्रीय गूढ तथ्यों का कवि ने द्रोपदी –भीम तथा अनेक पात्रों के माध्यम से वर्णन किया –

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठा।स्तथाविधान् असंवृतान्गान्निशिता इवेषवः।।

व्रजन्ति ते मूढयों का निर्माण कर दिये जाने पर (प्रवेश योग्य) जलाशय की तरह अत्यन्त दुर्बोध होने पर भी नीतिशास्त्र अभ्यास करने पर सुबोध हो जाता हैं, किन्तु जलाशय तथा नीतिशास्त्र के विषय में इस प्रकार का महापुरूष अत्यन्त विरल होता हैं, जो गर्त – पाषाण इत्यादि स्खलन से रहित प्रवेश हेतु सोपानों का निर्माण करता हैं तथा देश काल के अनुकूल संधि–विग्रह–यान–आसन–द्वैधीभाव–समाश्रयरूप उपायों का उपदेश देता हैं। साम–दाम–दण्ड–भेद नामक राजनीति के चतुर्विध उपायों, प्रभु–मन्त्र–उत्साह त्रिविध शक्तियों, सन्धि–विग्रह इत्यादि अंगों की सूक्ष्मताओं पर कवि ने शास्त्रसम्मत उपयोगी गहन विचारों को प्रस्तुत किया हैं ओर इनके महत्व का निरूपण किया हैं। निः सपत्न राज्य की चतुर्दिक् समृद्धि के लिए विवेकपूर्वक इनके समुचित विनियोग पर बल दिया हैं।राजलक्ष्मी का स्थायित्व इन पर आश्रित हैं। किरातार्जुनीयम् का दुर्योधन साम–दाम–दण्ड–भेद इन सभी उपायों के प्रयोग में अत्यन्त कुशल हैं। कार्यो की सिद्धि में योग्यतानुसार प्रयोग किये गये ये सभी उपाय परस्पर संघर्ष भाव को प्राप्त करके उसके लिए स्थायी अर्थसम्पत्तियों को प्रदान कर रहें हैं–

अनारतंतेन पदेषु लम्भिताविभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।
फलन्त्युपाया : परिबृंहितायतीरूपेत्य संघर्षमिवार्थसम्पदः।।

समयानुकूल नीतिमार्ग का पालन करने वाला पुरूष सदा अभ्युदय को प्राप्त होता हैं। अन्धकार के उपर विजय प्राप्त करने वाले सूर्य की तरह वह शत्रुओं पर आधिपत्य प्राप्त करता हैं। सम्मान सभी प्रकार से रक्षणीय हैं। इसकी रक्षा सर्वोपरि हैं। इसकी रक्षा हेतु स्वाभिमानी पुरूष सुखपूर्वक अपने प्राणों का परित्याग भी कर देते हैं, किन्तु तिरस्कारयुक्त जीवन कभी व्यतीत नहीं करते ।

राजनीति में कूटनीति का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' उक्ति सत्य ही है। जो पुरुष मायावियों, प्रवंचकों के प्रति स्वयं भी मायावी, छल– कपट करने वाले नहीं बनते, वे लोक में पराभव को प्राप्त करते हैं। महाकवि भारवि आगे कहते राजनीति में क्रोध का भी स्थान है; किन्तु क्रोध के वशीभूत होकर शीघ्रता में कोई कार्य नहीं करना चाहिए। भावुकता तथा उतावलेपन के कारण प्रयोजन में सफलता नहीं मिलती। पक्ष–विपक्ष की समस्त समस्याओं पर विचार विमर्श करके ही संधि–विग्रह के प्रति उद्योग करना चाहिए; क्योंकि अविवेक ही सकल आपदाओं, अनर्थों, असफलताओं का मूल कारण होता है –

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।

वृणृते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।

धैर्यपूर्वक अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए, तभी पूर्ण सफलता सम्भव है। इसीलिए युधिष्ठिर प्रथमतः शत्रु के समस्त वृत्तान्तों को जानने का प्रयास करते हैं, उस पर शीघ्र आक्रमण के पक्ष में नहीं है। प्रजाजनों की असंतुष्टि पर राजा को जीतना होता है और असंतुष्ट अन्य राजाओं से भी सहायता प्राप्त की जा सकती है। राज्य में व्याप्त आन्तरिक असंतोष अन्य राजाओं राजा के पराजय का कारण बनता है। युधिष्ठिर के सान्त्वनाप्रधान वचनों द्वारा वास्तव में रीजनीति – विषयक उपयोगी तत्वों का प्रकाशन हुआ है और इस तरह कवि की दूरदर्शिता का बोध होता है।

महाकवि भारवि राजनीति में क्रोध के स्थान को भी महत्व देते हैं, किन्तु क्रोध के वशीभूत होकर शीघ्रता में कोई कार्य नहीं करना चाहिए। भावुकता तथा उतावलेपन के कारण प्रयोजन में सफलता नहीं मिलती। पक्ष–विपक्ष की समस्त समस्याओं पर विचार विमर्श करके ही संधि–विग्रह के प्रति उद्योग करना चाहिए; क्योंकि अविवेक ही सकल आपदाओं, अनर्थों, असफलताओं का मूल कारण होता है –

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।

वृणृते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।

धैर्यपूर्वक अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए, तभी पूर्ण सफलता सम्भव है। इसीलिए युधिष्ठिर प्रथमतः शत्रु के समस्त वृत्तान्तों को जानने का प्रयास करते हैं, उस पर शीघ्र आक्रमण के पक्ष में नहीं है। प्रजाजनों की असंतुष्टि पर राजा को जीतना होता है और असंतुष्ट अन्य राजाओं से भी सहायता प्राप्त की जा सकती है। राज्य में व्याप्त आन्तरिक असंतोष अन्य राजाओं राजा के पराजय का कारण बनता है। युधिष्ठिर के सान्त्वनाप्रधान वचनों द्वारा वास्तव में रीजनीति – विषयक उपयोगी तत्वों का प्रकाशन हुआ है और इस तरह कवि की दूरदर्शिता का बोध होता है।

महाकवि भारवि ने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीयम् में राजनीति–विषयक उन सभी सारगर्भित तत्वों का समावेशन कर राजाओं के स्वभाव का सुन्दर परिचय दिया, जिनमें सहज रूप से अभिमान, आत्मश्लाघा की भावना होती है। अतः श्रुतिसुखद प्रशंसात्मक मनोहर वचनों को वे सुनना पसन्द करते हैं, भले ही वह तथ्यहीन मिथ्या हो। किन्तु हितकर होने पर भी अप्रिय सुनना नहीं चाहते। किन्तु राजा का कर्त्तव्य है कि वह हितकर बात कहने वाले गुप्तचर, सेवक, सचिव इत्यादि की बातों, मन्त्रणाओं को ध्यानपूर्वक सुने और सेवकों सचिवों को भी चाहिए वे सदैव हितकर उपदेश दें। इस प्रकार महाकवि भारवि ने काव्य की मधुर सरस शैली द्वारा राजनीति तथा व्यवहारिक ज्ञान के अत्यन्त गूढ तथा उपयोगी तथ्यों का उद्घाटन किया है। इन विषयों से सम्बन्धित कवि का गहन अनुभव प्रस्तुत काव्य में सुस्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुआ है।

पारिस्थैतिक विवेचनः

युधिष्ठिर अर्जुन भीष्म सभी पांडव उस दौरान जंगलों, नदी घाटियों के बीच,समय बिता रहे थे। वहां का परिवेश आदिवासी जन जीवन से पूरी तरह आच्छादित था। ऐसे में जंगली जीवों का भी संपर्क होता रहता था। महाकवि भरवी ने अपने महाकाव्य मे बड़े सलीके से पारिस्थितिक परिवेश का भी वर्णन किया है। किरात वेशधारी शिव के इस लोकोत्तर मिथक से इतर इस प्रसंग की अपनी एक विशिष्ट जनजातीय अभिव्यंजना भी है, जो इस काव्य को वर्तमान भावबोध के करीब लाती है। यही नहीं, युधिष्ठिर और गुप्तचर बने वनेचर के बीच घटित संवाद में उसकी जो अटूट स्वामिभक्ति, अदम्य निर्भीकता और उच्च राजनीतिक समझ सामने आती है, वह वनवासियों के प्रति भारवि की पक्षभरता में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती। वनेचर शुरू में ही स्पष्ट कर देता है–

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोनुजीविभिः।

अतोर्हसि क्षंतुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।

स किंसखा साधु न शास्ति योधिपं हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः।

सदोनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः ॥

गुप्तचर से प्राप्त दुर्योधन के राज्य के सुदृढ़ीकरण की सूचना जब युधिष्ठिर द्रौपदी और अन्य पांडवों को देते हैं, कौरवों द्वारा सर्वाधिक प्रताड़ित द्रौपदी अपने को जज़्ब करने में असमर्थ हो जाती है और उसका क्रोध उबल पड़ता है. तभी खड़ा होता है मर्यादा एवं समरनीति, साधन और साध्य के बीच का वह द्वंद्व. द्रौपदी युधिष्ठिर को 13 वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बजाए, जिस दौरान दुर्योधन अपनी स्थिति पुख़्ता कर लेगा, तुरंत उस पर आक्रमण करने का आग्रह करती है और इसके लिए नारी–सुलभ कटूक्तियों तक का इस्तेमाल करती हैदृ

व्रजंति ते मूढधिपःहै पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।

प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः॥

(जो लोग अपने मायावी शत्रु के साथ मायावी नहीं बनते वे मूर्ख हैं और सदैव पराजित होना ही उनकी नियति है, क्योंकि ऐसे निष्कपट, सीधे–सादे लोगों में दुष्ट वैसे ही घुस जाते हैं जैसे उघड़े हुए अंगों में तीक्ष्ण बाण.)

अवंध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवंति वश्याः स्वमेव देहिनः।

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातदार्हेन न विद्विषादरः॥

(जिसका क्रोध कभी निष्फल नही जाता, स्वतः लोग उसके वश में हो जाते हैं, वही विपत्तियों को दूर करने में समर्थ होता है। क्रोध–विहीन व्यक्ति के प्रति प्रेम–भाव रखनेवाले भी उसका आदर नहीं करते, न उससे शत्रुता होने पर कोई डरता है।)

दूसरे सर्ग में भीम भी द्रौपदी का समर्थन करता है। उसके अनुसार द्रौपदी की बातें पराक्रम देनेवाली उस औषधि के समान हैं जो परिणाम में तो गुणकारी है, किंतु स्वल्प मात्रा में लेने पर भी क्षीण (पाचन) शक्तिवालों को भयंकर दुःख देती है। वह युधिष्ठिर की तुलना उस हथिनी से करता है जो दलदल में फँसकर अपने ही ज्ञान और विद्वत्ता के भार से विनष्ट हो रही है। व्यवहार के इस पक्ष को ख़ारिज करने के लिए युधिष्ठिर मूल्य, मर्यादा, नीति और संयम का जो प्रतिपक्ष खड़ा करते हैं, वह मुट्ठी में ली गई बालू–जैसा है। हाँ, शुरू का छंद ज़रूर इतना प्रसिद्ध हुआ कि वह पूरा का पूरा एक कहावत बन गया, जिसके इर्द–गिर्द भारवि के अज्ञात जीवन से जुड़ी कई झूठी–सच्ची किंवदंतियां उठ खड़ी हुईं।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।

वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेवसम्पदः॥

युधिष्ठिर का ज़ोर क्रोध का त्याग करने, इंद्रियों पर नियंत्रण रखने, सद्‌बुद्धि के साथ विचार करने और महापुरुषों द्वारा आचरित पथ का अनुसरण करने पर है, उनके प्रमेय का मुख्य आधार यह है कि इस अवधि में दुर्योधन अपने अभिमान के मद से अन्य राजाओं को अपमानितकर उन्हें विरक्त कर देगा और उसके मंत्री तथा अनुगामी द्वेष भाव से ग्रस्त होकर स्वतः उसे नष्ट कर देंगे। वे इस प्रमेय पर इधर–उधर भटक रहे थे कि तभी व्यास का आगमन होता है, जो उन्हें इस पेचीदा स्थिति से छुटकारा दिला देते हैं। तीसरे सर्ग में व्यास कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण, कर्ण–जैसे धुरंधरों को पांडवों द्वारा अजेय बताते हुए 13 साल की अवधि में हर तरह से शक्ति–संवर्धन करने और भविष्य के अवश्यंभावी युद्ध की तैयारी के लिए उसका उपयोग करने की सलाह देते हैं। एतदर्थ वे अर्जुन को उच्च कोटि के शस्त्रास्त्र हेतु तपस्या से इंद्र को प्रसन्न करने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने साथ लाए एक यक्ष को भी छोड़ जाते हैं जो अर्जुन को इंद्र की तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान तक ले जाएगा. इस तरह वे बीच का एक व्यवहार्य मार्ग सुझा जाते हैं। यह है भारवि का अतिरेकों का समाहार और द्वंद्वात्मक स्थितियों के बीच का **पारिस्थैतिक संतुलन**।

तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार अर्जुन अपनी दयनीय स्थिति और एक भाई व पति के रूप में अपने उत्तरदायित्व, पांडवों और द्रौपदी की अवदशा, दुर्योधन और दुःशासन द्वारा किए गए अत्याचार और अपमान का ख़ाका खींचता है। बताता है कि वह कैसे वेदव्यास के सुझाव पर, भ्राता युधिष्ठिर की आज्ञा से शस्त्रास्त्र की प्राप्ति हेतु देवराज इंद्र को प्रसन्न करने के लिए तपस्या का यह व्रत कर रहा है। दुर्योधन दुष्ट है और दुष्टों के साथ मित्रता करना किसी भी समय गिर जाने वाले नदी के कगार की छाया में बैठने जैसा है।

श्वस्त्वया सुखसंवित्तिः स्मरणीयाधुनातनी।

इति स्वप्नोपमान् मत्वा कामान मा गास्तदङ्‌गताम॥

श्रद्धेया विप्रलब्धारः प्रिया विप्रियकारिणः।

सुदुस्त्याजास्त्यजन्तोपि कामाः कष्टा हि शत्रवः॥

उस–जैसे शत्रु से दाँव–पेंच में पराजित होने के कारण वह और उसके भाई स्वाभिमान त्यागकर पशुओं के समान जीविका–निर्वाह कर रहे हैं। नग्न, दुर्बल, मान और गौरव से हीन तृण–सरीखा जीवन जी रहे हैं। इस अवस्था में वे सहयोगियों–मित्रों की कौन कहे, आपस में ही लज्जित महसूस करते हैं। जीवन उसी मनुष्य का सार्थक है जिसका नाम योग्य पुरुषों में गिना जाए, जो अपने वंशजों की प्रतिष्ठा बढ़ाए, जिससे वसुंधरा सार्थक हो, जो अपनी निष्कलंकता से चंद्रमंडल को लज्जित करे. अर्जुन ने आगे कहा कि वह सुख और धन की लिप्सा से, या विनाश से डरकर ब्रह्मपद या मोक्ष की कामना से तप नहीं कर रहा है, उसका उद्देश्य सिर्फ़ इतना है कि शत्रुओं के छल से द्रौपदी के अपमान आदि के अपयश का जो कीचड़ लगा है, उसे शत्रु–वर्ग की विधवाओं के वैधव्य–संताप से निकले आँसुओं से धो डाले. शत्रुओं के संहार में विजय श्री प्राप्तकर वंश–परंपरा से मिली राज्यलक्ष्मी का उद्धार किए बिना यदि उसे मोक्ष भी मिल जाए तो उसको बाधक समझेगा. मनुष्य जब तक शत्रुओं द्वारा विलुप्त अपने यश को वाणों की शक्ति से पुनः न प्राप्त कर ले, उसका जीवन मृत के समान और तृण से भी गया–बीता है। जिस मनुष्य का क्रोध शत्रु को निर्मूल किए बिना ही शांत हो जाए उसे पुरुष कैसे कहा जा सकता है? पुरुष जाति में पैदा हो जाने भर से कुछ नहीं होता, आख़िर पशुओं में भी तो पुरुष जाति होती है। सच्चा पुरुष वह है जिसकी गुणग्राहकों द्वारा प्रशंसा हो और गिने–चुने आदर्श व्यक्तियों में जिसकी गणना की जाए. अर्जुन ने बताया कि राजा युधिष्ठिर प्रतिज्ञा के अनुसार शत्रुओं का बदला चुकाने के लिए उसी का स्मरण करते हैं, जैसे प्यासा व्यक्ति जल की अँजुरी का ही स्मरण करता है। इसलिए गृहस्थाश्रम के बीच में ही उसको (अर्जुन को) इस वानप्रस्थ वृत्ति का उपदेश धर्मशास्त्रों के विरुद्ध है, आश्रम–व्यवस्था का व्यतिक्रम है। अर्जुन के हर शब्द से एक क्षत्रिय का उत्कट रजोगुण टपकता है जो अध्यात्म के सतोगुण को फीका कर देता है। सर्ग के अंत में अर्जुन के तर्क से संतुष्ट देवराज इंद्र अपने स्वरूप में प्रकट होकर उसके लक्ष्य के अनुरूप शिव की आराधना का उपदेश देते हैं।

भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि और इहलौकिक जीवन के यथार्थ के इस शास्वत द्वंद्व को इसकी पूरी विषमता में खड़ा करने और फिर यथार्थ की व्याप्ति के सामने नतमस्तक होनेवाली भारवि की जो दृष्टि है, उसमें निहित आधुनिक भाव–बोध पर गम्भीर चर्चा की आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

1ण श्री महाभारत : प्रो0 मण्डन मिश्र।
2ण किरातार्जुनीयम् : एक समीक्षा, डॉ प्रभा अवस्थी।
3ण किरातार्जुनीयम् "घण्टापथ" संस्कृत व्याख्या, डॉ सुधाकर मालवीय।
4ण किरातार्जुनीयम् : 'घण्टापथ' सुधा टीका, श्री गंगाधर मिश्र।
5ण किरातार्जुनीयम् : संस्कृत टीका, आचार्य शेष राज शर्मा।
6ण किरातार्जुनीयम् डॉ0 पंचबहादुर सि ंह।
7ण किरातार्जुनीयम् डॉ0 डॉ0 नर्मदेश्वर कुमार त्रिपाठी।
8ण करातार्जुनीयम् श्री बदरी नारायण मिश्र।
9ण संस्कृत साहित्य का बृहद इतिहास (डॉ0 पुष्पा गुप्ता)।
10ण किरातार्जुनीयम् :'सुबोध' संस्कृत हिन्दी टीका प्रथम सर्ग।